

राष्ट्रीय आन्दोलन का सहयात्री हिन्दी सिनेमा : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. नीलांजना त्रिपाठी*

19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में एक नये सशक्त संचार के माध्यम के रूप में 'सिनेमा' का उदय हुआ जिसमें जनमानस को चमत्कृत करने की अद्भूत और जादूई क्षमता विद्यमान थी। इस क्षमता का सकारात्मक उपयोग भी आरंभिक दौर में राष्ट्रीय चेतना से लैस और प्रतिबद्ध फिल्मकारों ने किया। निष्कर्षतः सांस्कृतिक पुर्नजागरण की पूर्ववर्ती चेतना उतरोत्तर राष्ट्रीय आन्दोलन में परिणत होती गयी और भारतीय सिनेमा में इसकी प्रतिष्ठा निखार पाने लगी।

धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक इतिवृत्तात्मक कथानकों के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन की अनुगूँज मूक युग से ही राष्ट्रीय चेतना को बहुआयामी विस्तार और चिन्तन की दिशा देने में फिल्मकारों को जुटे देखा जा सकता है। वस्तुतः सिनेमा और राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्भव या अंकुरण समकालीन है। दोनों का समानांतर विकास और विस्तार ऐतिहासिक महत्व की घटनायें हैं। "इतिहास के इस कालखण्ड में दोनों कभी कंधे से कंधा मिलाते हुए, कभी एक दूसरे से दूर भागते हुए तो कभी एक-दूसरे के पूरक दिखते हैं।"¹

सन् 1885 से 1947 की अवधि में राष्ट्रीय आन्दोलन के जितने मुख्य पड़ाव हैं— मसलन बंगाल विभाजन (1905), कांग्रेस में फूट (1907), दिल्ली दरबार का आयोजन (1911), प्रथम विश्वयुद्ध (1914), वोल्शेविक क्रांति (1917), मार्लेमिन्टो सुधार (1919), जालिया वाला बाग हत्याकाण्ड (1919), असहयोग आन्दोलन (1920), चौरी-चौरा कांड (1922), साइमन कमीशन का आगमन (1928), सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930), भगत सिंह व साथियों की फांसी (1931), द्वितीय विश्वयुद्ध (1939), भारत छोड़ो आन्दोलन (1942), बंगाल का अकाल (1943), और भीषण साम्प्रदायिक तनाव एवं विभाजन की त्रासदी के साथ आया स्वतंत्रता का उल्लासपूर्ण क्षण (1947), जैसे महत्वपूर्ण घटनाक्रमों को सामाजिक सरोकार रखने वाला कोई भी जनोन्मुख संचार माध्यम नजर अंदाज नहीं कर सकता था।² निश्चय ही विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रतिवर्ष तैयार होने वाले 'सिनेमा' में भी इसकी प्रतिध्वनि और प्रतिष्ठा कहीं मुखर तो दबे स्वरों में देखी-सुनी जाती है। इन्हीं स्वरों को दबाने के लिए उपनिवेशिक सत्ता को सेंसर कानून लागू करने पड़े।

*शिक्षिका, सामाजिक विज्ञान संकाय, गयादास कबीर उच्च विद्यालय सह
इण्टर कॉलेज, रसीदचक, मठिया, सीवान (बिहार)

"किसी देश की सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक परंपरा का परिचय प्राप्त करने के लिए जिन साधनों का सहारा लिया जाता है, उनमें नाट्य कला एवं सिनेमा का विशिष्ट स्थान है।"³

"सन् 1919 में जालियावाला बाग से सन् 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन तक की अवधि में देश का मध्यवर्ग राजनैतिक रूप से अधिक चेतन हो चुका था। यद्यपि उसकी इस चेतना में गुलामी की हीनभावना भी परिलक्षित होती थी। गुलामी के साथ देश में धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक गुलामी भी व्याप्त थी। इसी समय विश्व में आदर्शों को लेकर लड़ाई छिड़ी। अनेक प्रचलित वादों में सत्य की शक्ति को जांचने के लिए बुद्धिवादी मनुष्य, विज्ञान विषय का सहारा लेकर संहार करने लगा।"⁴ सिनेमा भी इस सत्य संधान का एक माध्यम बना। सिनेमा मनोरंजन का साधन होते हुए भी सिर्फ मनोरंजन नहीं करता उसमें प्रकट या अन्तर्निहित भाव शाश्वत व मानवतावादी संदेश लिए रहते हैं। यह जरूरी नहीं कि नियोजित या घोषित संदेश ही किसी फिल्म का मुख्य स्वर हो। दर्शक अपनी पृष्ठभूमि और ग्रहणशीलता से उसमें एक से अधिक संदेश भी पाते हैं। "फिल्म शुद्ध फँतासी भी हो सकती है, अतीत का अध्ययन भी हो सकती है, समसामयिक देश-काल की स्थिति का विश्लेषण भी हो सकती है। हर काल में उसमें कुछ सांस्कृतिक मूल्य अंतर्निहित होते हैं। समाज की इसी व्यवस्था और समस्या पर फिल्में बनती रही हैं। अतः सांस्कृतिक-सामाजिक सरोकार की फिल्मों की परंपरा नयी नहीं है। और तब राष्ट्रीय भावनाओं से भी यह अछूती नहीं रह सकती। अपने जन्म के पहले दशक की फिल्मों ने भी इन्हीं ज्वलंत प्रश्नों और समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयत्न किया था।"⁵ यह फिल्म-निर्माण की मूल विशेषता रही। "धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक इतिवृत्तात्मककथानकों के द्वारा मूक युग से ही राष्ट्रीय चेतना को बहुआयामी विस्तार और चिन्तन को नवीन दिशा देने में सिनेमा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और हम कह सकते हैं कि सिनेमा और राष्ट्रीय आंदोलन दोनों का समानांतर विकास-विस्तार हुआ। दोनों समानांतर गति से आगे बढ़ते रहे।"⁶

"रूस की वोल्शेविक क्रांति (1917) का प्रभाव भी भारत के राष्ट्रीय आंदोलन पर पड़ा। लेनिन के नेतृत्व में वोल्शेविक पार्टी जिसे दूसरे शब्दों में हम कम्युनिस्ट पार्टी कहते हैं, ने जार की शासन-सत्ता को जड़ से उखाड़ फेंका था और वहाँ एक नया समाजवाद स्थापित हो चुका था। इस घटना से भारत के जागरूक देशप्रेमी लोग परिचित थे।"⁷ ऐसे में भारत का कला-समाज भी इस विषय से अछूता नहीं रहा और अपने अंदाज से नये समाज के निर्माणार्थ फिल्म निर्माण में जुटे रहे। राष्ट्रीय चेतना का विकास किस तरह हो इसके लिए सिनेमा भी अपने हिसाब से काफी प्रयत्नशील और प्रयोगशील था।

“भारत का सिनेमा भी समाजवाद की ओर जाना चाहता था। लेकिन वह राजनेता की तरह प्रत्यक्ष रूप से भाषण नहीं दे सकता था। फिल्मों में कथानकों, पात्रों, संवादों और दृश्यों को दिखाकर मन ही मन दर्शक की सोयी चेतना को जगाने में सफल हो जाना चाहता था।”⁸ जिस वक्त मूक फिल्में बन रही थीं, फालके एवं अन्य निर्माता राष्ट्रीयता से अलग कुछ नहीं कर रहे थे। संपत भी राष्ट्रीय चेतना के विकास में अपनी महती भूमिका निभा रहे थे। फालके की भूमिका इसलिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि सिनेमा को भारत की जमीन पर उतारने वाले वही प्रथम व्यक्ति थे।

तीसरे दशक में भारत की राष्ट्रीयता और राजनीतिक भावना अपनी पहचान बना चुकी थी जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति उस दौरान बननेवाली फिल्मों में देखी जा सकती है लेकिन वह अभिव्यक्ति बहुत जोश और उमंग-उत्साह की जगह व्यथा को प्रगट करती है। “चौथे दशक में यह स्थिति बदली और सिनेमा अपना तेवर बदलता दिखता है क्योंकि अब राष्ट्रीय आंदोलन का दृष्टिकोण भी बदलने लगा था और सिनेमा उसको प्रतिबिंबित ही तो करता था।”⁹ तीसरा दशक उद्धार और सुधार में व्यस्त रहा चाहे वह गाँव का उद्धार हो या समाज और परिवार का। वह उस विश्वास को अब खारिज करना चाहता था जो विश्वास नहीं, केवल प्रवंचना थी। “चौथा दशक सांप्रदायिक तनावों को भी देख रहा था जिसमें हिन्दुओं का हिन्दूवाद अलग शंखनाद कर रहा था तो मुस्लिम अलग शहनाई बजा रहा था।”¹⁰ “संचार माध्यम के साथ विडंबना यह थी कि उसको आजादी नहीं दी जाती थी। सेंसरशिप का शिकार हो जाती थी। सेंसरशिप फिल्म के उस दृश्य को साफ काट देता था जिसमें कोड़े मारनेवाला दृश्य होता था या अंग्रेज पर भारतवासियों की जीत वाला होता था।”¹¹ फिर भी अपराजेय सेनानी की तरह सिनेमा आगे बढ़ रहा था। 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन शुरू हुआ और उसी साल एक फिल्म बनी ‘धीरज’ जिसमें स्कूल का बच्चा हाथ में तिरंगा लिये है, जुलूस में जा रहा है और राष्ट्रीय गीत गा रहा है। फिल्म में ये बच्चे इतने जागरूक हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन को मुकाम तक पहुँचाने के लिए या तो अपनी जेब के पैसे उसमें देते हैं या चंदा वसूलते हैं। “इसी तरह 1943 में बनी ‘चाँदनी’ फिल्म देखकर या फिर ‘किस्मत’ देखकर हम उनमें भारत छोड़ो आंदोलन की अनुगूँज सुन सकते हैं। चाँदनी में एक प्रसंग आया है कि यदि लड़कियों को भी अपेक्षित शिक्षा दी जाए तो गाँधी और नेहरू की तरह वो भी राष्ट्रभक्त बन सकती हैं।”¹² 1941 में देवकी बोस ने एक फिल्म बनायी ‘अपना घर’। इस फिल्म में गुलामी का बंधन तोड़ने की कोशिश का ज्वलंत दृश्य है। आजादी का झंडा उठाने का साहसिक संवाद है साथ ही वह विशाल भाव है जिसमें हृदय परिवर्तन पर गाँधी जी का ज्यादा जोर था और अहिंसा के

पथ पर चलकर हम स्थायी शांति प्राप्त कर सकते हैं। 1943 में बनी ‘बदलती दुनिया’ का थिम भी उसी आजादी और गुलामी के बीच की कहानी पर आधारित है।

मूक सिनेमा के दौर में ही भ्रष्ट औपनिवेशिक संस्कृति के प्रभावों के खिलाफ सामाजिक चेतना से लैस फिल्मों की परंपरा शुरू हो गई थी। पाटनकर बंधुओं द्वारा निर्मित फिल्में ‘शिक्षा’ तथा ‘वासना’ एवं ‘कबीर-कमाल’ उल्लेखनीय हैं। जिन्होंने सामाजिक-चेतना का अलख जगाने के प्रयासों से सिनेमा को भी जोड़ा। “भारत में अंग्रेजों ने जिस नए आर्थिक आचार-विचार को जन्म दिया था। उस जमींदारी को पहली बार 1925 में बाबूराव पेंटर ने अभिव्यक्ति दी, ‘सावकारी पाश’ बनाकर। शांताराम ने इस फिल्म से ही अपने फिल्मी कैरियर की शुरुआत की थी। वे फिल्म में विद्रोही किसान युवक बने थे।”¹³

1931 में ‘आलमआरा’ के प्रदर्शक के साथ ही भारत में बोलती फिल्मों का युग शुरू हुआ, यह वह समय था जब राष्ट्रीय आंदोलन गोलमेज सम्मेलन के उबारू दौर से गुजर रहा था और जनता बेचैन राष्ट्रीय नेताओं को निहार रही थी। इस समय हिंदी सिनेमा ने जनता की भावनाओं को पर्याप्त अभिव्यक्ति दी। भारत की दूसरी सवाक फिल्म का गौरव प्राप्त ‘जागरण’, ब्रिटिश सेंसर का शिकार हो गई। फिल्म का नाम, उसके कथा का संकेत देता था। इसी दौरान कांग्रेस के क्रिया-कलापों पर बनी फिल्म ‘कांग्रेस गर्ल’— जिसे नेशनल थिएटर मद्रास ने बनाया था— भी जब्त हुई। घाटा इतना जबरदस्त हुआ कि फिल्म बनाने वाली कंपनी बंद हो गई। “तीस और चालीस के दशक में प्रभात, नयू थिएटर्स एवं बांबे टाकीज सरीखी फिल्म कंपनियों की फिल्मों ने सामाजिक चेतना से लैस फिल्मों की क्षीणधारा को यदि मुख्यधारा नहीं तो महत्वपूर्ण धारा अवश्य बना दिया।”¹⁴ सिनेमा की यह धारा राष्ट्रीय आंदोलन के कारण उपजी विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों के उतार-चढ़ाव को रिकार्ड ही नहीं कर रही थी बल्कि उन्हें गति भी दे रही थी। इस धारा का नैरंतर्य हम नितिन बोस, चंदूलाल साह, महबूब खान, बी. एन. रेड्डी, विजय भट्ट, सोहराब मोदी, मास्टर विनायक, गजानन जागीरदार, विमल राय, के. ए. अब्बास और चेतन आनंद की फिल्मों के रूप में 1947 के पहले और आगे तक भी पाते हैं।¹⁵

बीसवीं सदी के तीसरे दशक की ढेरों फिल्मों में जमींदार और किसान, साहूकार और गरीब जन तथा मिल मालिक और मजदूरों के संबंधों का, शोषण के तरीकों का चित्रण हुआ किंतु पूरी तरह ईमानदारी से विषय को चित्रित करने का साहस बहुत कम लोगों ने किया। “बांबे टाकीज की फिल्म ‘जन्मभूमि’, प्रभात की फिल्म ‘वहां यहाँ’ बियोड द होराइजन (उस जमाने की फिल्म के प्रायः दो नाम हुआ करते थे— एक भारतीय भाषा में तथा दूसरा अंग्रेजी में) जो प्रदर्शित हुई थी,

उनमें दासता के विरुद्ध क्रांतिकारी स्वयं को संजीवता के साथ घ्वनित किया गया। देश के युवा वर्ग के हृदयों की कसमसाहट इनमें झलकती है।¹⁶ इसी दौर की एक फिल्म 'आजादी' थी, जिसमें देश के अंदर फ़ैली गुलामी और दासता की मानसिकता को जड़ से उखाड़ फेंकने का अभिप्राय छिपा था।

1934 में ही श्री एम. भवनानी ने प्रेमचंद की एक कहानी पर 'द मिल' या 'मजदूर' नाम की फिल्म बनाई। इस फिल्म मिल मजदूर और मिल मालिक के संबंधों का राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में खुलासा करती थी। इस फिल्म को देश के कुछ हिस्सों में बैन कर दिया गया जबकि इलाहाबाद में यह फिल्म 1935 में प्रदर्शित हुई थी। फिल्म को बेहद प्रगतिशील और मजदूर विरोधी दोनों ही माना गया। पर निश्चय ही फिल्म विचारोत्तेजक थी तभी तो बलराम साहनी ने जहां इसे उत्कृष्ट फिल्मों को श्रेणी में रखा वहीं अभ्युदय ने भी इस पर एक से अधिक लेख छापे।

"भारत में 5 मार्च, 1918 को सिनेमैटोग्राफर एक्ट लागू किया गया।"¹⁷ इस एक्ट का संबंध विशेष रूप से देश की राजनैतिक चेतना से था, न कि सांस्कृतिक चेतना से। जहां भी अंग्रेजों को यह लगता कि किसी फिल्म विशेष से स्वतंत्रता का संदेश फैलाने की कोशिश हो रही है, वहीं वह दृश्य संसार की कैंची का शिकार हो जाता। सन् 1921 में एक फिल्म बनी थी—'भक्त विदुर'। उसमें द्वारकादास संपत, विदुर बने थे, जो दुबले—पतले और लंबे कद के थे। भक्त विदुर के शरीर पर एक धोती थी और हाथ में एक छड़ी। ब्रिटिश सरकार ने इस भक्त विदुर को महात्मा गाँधी का प्रतीक मान कर उस पर प्रतिबंध लगा दिया। कुछ इसी तरह की घटना 'वन्दे मातरम्' फिल्म के साथ भी हुई। अंग्रेजों के लिए 'वन्दे मातरम्' शीर्षक राष्ट्रवादी चेतना को जगाने वाला था। इसलिए इस फिल्म के शीर्षक में आश्रम शब्द जोड़ कर तसल्ली पा ली गई। वही शांताराम को अपनी फिल्म 'स्वराज तोरण' के उस दृश्य को पूरी तरह हटाना पड़ा था, जिसमें शिवाजी के सैनिक, दुश्मनों से अपने किले को आजाद कराकर स्वतंत्र ध्वज फहराते हैं। यह फिल्म बाद में 'उदय काल' के नाम से प्रदर्शित हुई।

सन् 1939 में सोहराब मोदी उस फिल्म का निर्माण किया, जिसके लिए आज भी सोहराब मोदी जाने जाते हैं। यह फिल्म थी— जहांगीर की न्याय व्यवस्था को दर्शाने वाली 'पुकार'। यह फिल्म सुपरहिट रही।

दो वर्ष बाद ही सन् 1941 में उन्होंने फिल्म 'सिकन्दर' बनाई और उसमें पोरस का अभिनय उन्होंने स्वयं किया। यह एक बड़े कैनवास की फिल्म थी, जबकि उस समय तक इतने बड़े बजट की फिल्म बनाने का प्रचलन शुरू नहीं हुआ था। इस फिल्म में पुरु की सेना का हाथी दस्ता सिकन्दर की सेना के घुड़सवार दस्ते के युद्ध के प्रसंग बहुत प्रभावशाली बन पड़े हैं। यह द्वितीय विश्वयुद्ध का

समय था। "ब्रिटीश सरकार को सिकन्दर फिल्म में दिखाया गया यह प्रसंग ठीक नहीं लगा जिसमें उसके सैनिक विद्रोह कर देते हैं। हालांकि ब्रिटीश सरकार ने फिल्म को पूरी तरह तो प्रतिबंधित नहीं किया लेकिन छावनियाँ में इसके प्रदर्शन पर रोक लगा दी।"¹⁸

'अपना घर' में देवकी में देवकी बोस ने प्रगतिवादी विचारधारा को स्वर प्रदान किए थे। प्रमुख रूप से अत्याचार, हिंसा और दमन के विरुद्ध इसमें आवाज उठाई गई थी। इसके संवाद और गीत स्पष्टतः राष्ट्रीय— भावनाओं का परिचय देते हैं। इस चलचित्र के एक गीत की पंक्तियाँ देखिए।

मिटे गुलामी, लेंगे आजादी,

देश का झण्डा ऊँचा कर।

अपना देश है अपना घर।।

फिल्म 'चालीस करोड़' में, चालीस करोड़ भारतीयवासियों की स्वाधीनता तथा समाज के नवोत्थान की भावनाओं को संजोया गया था। "अपने देश में असामाजिक—तत्वों, विशेषकर तस्कर व्यापार से राष्ट्रीय—हित को नुकसान पहुंचाने वाले भारतवासियों की भ्रष्टाचार फैलाने वाली दुष्प्रवृत्ति पर प्रहार किया गया था। 'पहला आदमी' और 'समाधि' चलचित्रों का संबंध आजाद हिंद फौज के राष्ट्रीय—अभियानों को ग्रहण करने वाले कथानकों से था जिनमें मातृभूमि के प्रति भारतीयों के प्रेम की उत्कृष्ट—भावना का चित्रण किया गया था।"¹⁹ यह दशक राष्ट्रीय जीवन के उत्थान की ओर बढ़ाये गए भारतवासियों के चरण—चिन्हों को अंकित करने में प्रयत्नशील रहा और देश के सदियों से पराधीन जीवन और स्वतंत्रता के प्रातः काल में राष्ट्रीय—भावनाओं का उन्मेष मुखरित होता रहा। सन् 1947 में रंजीत मूवीटोन के चलचित्र 'छीन ले आजादी' के साथ ही भारतवासियों ने अंग्रेजों के हाथ से वास्तव में आजादी छीन ली और देश स्वतंत्र हो गया। इन चलचित्रों की कथाएं, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति करने वाली ही थी। इस प्रकार यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि भारत के स्वाधीनता संघर्ष में हिंदी सिनेमा का अभूतपूर्व एवं महत्वपूर्ण योगदान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भारतीय सिनेमा का इतिहास, मनमोहन चड्ढा, पृष्ठ 16
2. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, विपिनचन्द्र, पृष्ठ 233
3. पटकथा, वर्ष एक अंक पांच 1987, पृष्ठ 43
4. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, विपिनचन्द्र, पृष्ठ 236
5. भारतीय सिनेमा का इतिहास, मनमोहन चड्ढा, पृष्ठ 34

6. भारतीय सिनेमा के 70 वर्ष, पृष्ठ 126
7. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, विपिनचन्द्र, पृष्ठ 150
8. मेरी फिल्मी आत्मकथा, बलराज साहनी, पृष्ठ 13
9. भारतीय चलचित्र, महेन्द्र मित्तल, पृष्ठ 46
10. आज का सिनेमा, विजय अग्रवाल, पृष्ठ 21
11. इण्डियन सिनेमाटोग्राफ एक्ट 1819
12. भारतीय सिनेमा के 70 वर्ष, पृष्ठ 53
13. इण्डियन सिनेमा, फिरोज रंगुनवाला, पृष्ठ 63
14. आधी हकिकत आधा फसाना, प्रहलाद अग्रवाल, पृष्ठ 70
15. भारतीय सिनेमा का इतिहास, मनमोहन चड्ढा, पृष्ठ 96
16. भारतीय चलचित्र, महेन्द्र मित्तल, पृष्ठ 75
17. लिबर्टी एण्ड लाइसेंस इन द इण्डियन सिनेमा अरूणा वासुदेव, पृष्ठ 42
18. लिबर्टी एण्ड लाइसेंस इन द इण्डियन सिनेमा अरूणा वासुदेव, पृष्ठ 65
19. भारतीय सिनेमा का इतिहास, मनमोहन चड्ढा, पृष्ठ 112

मुस्लिम राजनीतिक चिंतन के विकास में 'सर सैयद अहमद खाँ की भूमिका

डॉ. नूरजबी

आठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही भारत में यूरोप की जातियों का आगमन होने लगा। ये जातियाँ मुख्यतः व्यापार करने के उद्देश्य से भारत वर्ष आई थी, इसी सदी के उत्तरार्द्ध में इन विदेशियों ने केन्द्रीय सत्ता के कमजोरी का लाभ उठाकर भारत की प्रसिद्ध शक्तियों को हटाकर अपनी सत्ता कायम कर ली और अंग्रेज भारत के शासक हो गये।

1857 ई0 में मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर को अंग्रेज ने गद्दी से हटा कर मुसलमानों की राजनीतिक तथा सामाजिक प्रतिष्ठा, धर्म, आर्थिक सम्पन्नता आदि को खतरे में डाल दिया। मुस्लीम समाज में सर्वत्र निराशा व्याप्त हो गई थी। भारतीय मुसलमान इसे सहजता से स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। मुस्लिम समाज के इसी संक्रमण की स्थिति में सुधार लाने के लिए कुछ मुसलमान नेताओं ने आंदोलन प्रारम्भ किया तथा उनके द्वारा वहाबी आंदोलन शुरू किया जो एक सामाजिक, धार्मिक आंदोलन था लेकिन इसका स्वस्थ राजनीतिक था। इस आंदोलन ने मुसलमानों में जागरण पैदा किया और उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के जड़ को भारत से उखाड़ फेंकने का असफल प्रयास किया। इस आंदोलन को पुनरुत्थानवादी एवं पश्चदृष्टि वाला घोषित कर दिया और मुसलमानों में कई ऐसे राजनेता एवं सुधारक पैदा हुये जिन्होंने मुसलमानों को आधुनिकतावादी दृष्टिकोण अपनाने को कहा और ब्रिटिश राज की नीतियों के कारण भारत में जो तथा कथित पुनर्जागरण पैदा हुआ था उसे अपनाने को कहा। ऐसे कुछ महान राजनीतिक चिंतकों में सर सैयद अहमद खाँ, मुहम्मद इकबाल, मौलाना अबुल कलाम आजाद एवं ओबेदुल्ला सिंधि प्रमुख थे जो मुसलमानों के राजनीतिक चिंतन को एक नयी दिशा प्रदान की।

मुस्लीम सम्प्रदाय में दो प्रकार नेता थे आधुनिकवादी तथा परम्परावादी। आधुनिकवादी पाश्चात्य ढंग के अन्तर्गत शिक्षा पायी थी। दूसरी ओर पारंपरावादी मध्ययुगीन ढंग से। आधुनिकवादी मुस्लीम विचारको का प्रभाव शिक्षित वर्ग पर था वही परंपरावादी नेताओं का प्रभाव निरक्षर, गरीब, कारिगरों, किसानों और मजदूरों पर।

आधुनिक काल में मुस्लिम राजनीतिक चिंतन के विकास में सर सैयद अहमद खाँ की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सर सैयद अहमद 19वीं सदी के

